सावधान !!!

(देवद्रव्य व्यवस्था मार्गदर्शक)

-: द्रव्य सहायक :-

प. पू. साध्वीजी श्री पुण्यरेखाश्रीजी म. की सुशिष्या
प. पु. साध्वीजी श्री परागरेखाश्रीजी म.
की दीक्षा की आमदनी में से ।

• लेखक

प. पू. आचार्य श्री विचक्षणसूरीश्वरजी म.

सावधान !
सावधान !!
सावधान !!!

(देवद्रव्य व्यवस्था मार्गदर्शक)

-: सम्पादक :-
वर्धमान तपोनिधि आचार्य देव श्री भुवनभानुसूरीश्वर शिष्य
मेवाड देशोध्दारक-धर्मरत्नाकर-४०० तेला के तपस्वी
आचार्य श्री जितेन्द्रसूरिजी म.

प्रति २०००

वि. सं. २०५०

मुल्य तीन रूपए

प्रकाशक व प्राप्तिस्थान
कुमार एजन्सी (इण्डिया)
४४ खाडिलकर रोड़
मुंबई ४.

मेवाड जिनमंदिर जीर्णोद्धार कमिटी

मेवाड के जीर्ण शीर्ण क्षतिग्रस्त प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार जैन समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तिओं की बनी हुई यह कमिटी करवा रही है। करीब एक सौ मंदिरों का जीर्णोद्धार हो चुका है। करीब पच्चीस मंदिरों का जीर्णोद्धार कार्य चालू है। देवद्रव्य में से, उपधान तप की माला व प्रतिष्ठा के चढाव में से या व्यक्तिगत रकम भेजकर अनन्त पुण्य प्राप्त करें।

जूना डीसा जैन संघ, नाकोडा तीर्थ पेढी, आणंदजी कल्याणजी पेढी, कोल्हापुर जैन संघ, संभवनाथ जैन पेढी, विजयवाडा और कई संघों से प्राप्त अनुदान व्दारा जीर्णोद्धार के कार्य प्रगति पर हैं।

किसी भी एक मंदिर का सम्पूर्ण जीर्णोद्धार भी आपकी ओर से करवा सकते हैं। आपके संघ का शिलालेख (तख्ती) लगवा दी जायेगी।

ड्राफ्ट या चैक कमिटी के नाम का निम्न पते पर भेजें :-

कुमार एजन्सी (इण्डिया)

४४/खाडिलकर रोड, मुंबई - ४.

फोन - ३५ ६१ ४७/३५ ७७ ८२/३५ ६१ ३८

३८६ १७ ३२ फेक्स - ०२२-३८७ ३१ ४२

GRAM : KUMAR CARDS

देवद्रव्य की रक्षा करने वालों के
जन्म-मरण घटते हैं।
देवद्रव्य की वृद्धि करने वाला
तीर्थंकर बनता है।
देवद्रव्य का भक्षण करने वाला
सात बार सातवीं नरक में जाता है।

-संबोध सित्तरी प्रकरण

देवद्रव्यादि धर्म द्रव्य की व्यवस्था के अधिकारी कौन ?

धर्म द्रव्य की सम्पत्ति का संरक्षण संवर्धन और सद्व्यय की व्यवस्था के लिए जैन संघ व्यवस्थापक वहीवटदारों को नियुक्त करता है। उनकी जानकारी के लिए धर्म द्रव्य की व्यवस्था करने के लिए कैसे आदमी अधिकारी होते हैं ? उसका स्वरूप पंचाशक

प्रकरण ग्रन्थ के अनुसार द्रव्य सप्ततिका ग्रन्थ में महोपाध्याय श्री लावण्य विजयजी ने इस तरह बताया है -

अहिगारी य गिहत्थो सुयणो वितमं जुग्गो कुलजो ।
अखुद्दो धिइबलीयो मइमं तह धम्मरागी य ।
गुरुपूआकरणरइ - सुस्सुसाईगुणसंगओ चेव ।
आयाहिगयविहाणस्स धणियमाणपहाणो य ।

वास्तवमें ऐसे गुणवाला श्रावक देव द्रव्यादि धर्म - द्रव्य का और धर्म स्थानों का वहीवट करने में अधिकारी कहा गया है ।

(१) जिसका स्वजन कुटुंब अच्छा तथा निर्धन न हो ।

धर्म विरुद्ध और लोक विरुद्ध कार्य नहीं करने वाला कुटुंबअच्छा कुटुंब कहा जाता है । ऐसे कुटुंबवाला धर्मद्रव्य तथा धर्म स्थानों का वहीवट करे तो उसके शुभ - भावों की वृद्धि हो सके । अन्यथा कुटुंब के सदस्य धर्म-

-विरुद्ध अथवा लोक विरुद्ध कार्य करे तो अनेक प्रकार की विपत्तियाँ आने की वजह से वहीवट करने वाले का दिमाग आर्त्त - रौद्र ध्यान के संक्लेश से ग्रस्त रहे। अत: उसको शुभ भाव वृद्धि की संभावना ही नही रहती।

गरीब होगा तो कभी देवद्रव्य का ब्याज या रकम अपने काम में ले लेगा। जिससे जन्म-जन्म दु:ख पावेगा।

(२) न्यायोपार्जित धनवाला :-

न्याय से धन कमाने वाला हो।

(३) योग्य :-

राजादि व्दारा सन्माननीय। जिसका कोई भी पराभव नहीं कर सके।

(४) उत्तम कुलोत्पन्न :-

उत्तम कुलमें जन्मा आदमी धर्म द्रव्यादि के वहीवट के कार्यों को अच्छी तरह पूर्णता तक पहुंचा सकता है। हलके कुल वाला तो बाधा या कठिनाई

पड़ने पर बीच में ही कार्य को छोड देता है।

(५) अक्षुद्र - ह्रदय की विशालता वाला :-

यह समस्त कार्यों को सुन्दर ढंग से कर सकता है। कंजुसाइ वगैरे करने के कारण क्षुद्र आदमी से तो कार्य बिगड जाते हैं।

(६) धृति बलवान :-

यह आदमी कितनी ही कठिनाई वाले कामों में अपने मनको स्थिर और समभाव में रख सकता है और काम को अधबीच छोड़े बिना व्यवस्थित रूप में पूरा करता है।

(७) मतिमान् -

बुध्दिशाली मनुष्य अपनी बुध्दि से कार्यों में आती हुई कठिनाइओं को अच्छी तरह से दूर कर सकता है।

(८) धर्म रागी -

धर्म कार्य करते समय कभी भी अधर्म की प्रवृत्ति न हो जाय, उसकी सावधानी रखने वाला होता है।

९) गुरु भक्त -

गुरुभगवन्त इसको देव द्रव्यादि धर्म द्रव्यादि का वहीवट ठीक तौर पर कैसे करना ? यह समझा सके तथा समझ कम हो तो जिनाज्ञा के विरुद्ध वहीवट करने से रोक भी सकें।

(१०) शुश्रूषादि बुद्धि के आठ गुण युक्त -

इनसे धर्म तत्त्वों की जानकारी अच्छी प्राप्त होने से इन गुणवाले धर्म द्रव्यादिका वहीवट सोच समझ कर जिनाज्ञा के अनुसार कर सकते हैं।

(११) देवद्रव्यादि की वृद्धि वगेरे के उपायों का ज्ञाता -

यह देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य के वहीवट का एक भी कार्य जिनाज्ञा के विरुद्ध नहीं करेगा।

श्री जैन संघ को ऐसे गुण सम्पन्न सुश्रावक को देव - द्रव्यादि धर्म द्रव्य के तथा मन्दिर उपाश्रयादि धर्म स्थानों के वहीवट में ट्रस्टी तरीके वास्तव में अधिकारी होने से नियुक्त करना चाहिए।

देवद्रव्य भक्षण के प्रति सुग श्रावकों को होती है । सुग चली न जावे इत्यादि अनेक हेतु से देव द्रव्य के या ज्ञान द्रव्य के मकान में किराये से भी रहना श्रावक के लिए उचित नहीं है ।

साधारण सम्बन्धि तु संघानुमत्या यदि व्यापार्यते तदाऽपि लोकव्यवहाररीत्या भाटकमर्प्यते न तू न्यूनम् ॥

साधारण खाते के दुकान मकानादि में संघ की अनुमति से रह सकते हैं। फिर भी उसका किराया लोग - व्यवहार में जो हो उस मुताबिक देना चाहिये। कम देवे तो न चले। कम किराया देने वाला पाप का भागी बनता है ।

गृहचैत्यनैवेद्यचोक्षादि तु देवगृहे मोच्यम् ॥

श्राद्ध विधि ग्रन्थकार कहते हैं कि घर मंदिर में नैवेद्य चांवल सोपारी नारियल वगेरे जो कुछ आवे वह संघ के मन्दिर में दे देना चाहिए ।

कितनेक जगह पर घर मन्दिर में प्रभुभक्ति

निमित्त से इकट्ठे हुए देवद्रव्य का व्यय घर मन्दिर के जीर्णोद्धार में रंग-रोगानादि करने में तथा पूजा के लिए केसर सुखडादि की व्यवस्था करने में करते हैं। वह किसी तरह से युक्त नहीं है। जिस व्यक्ति का मन्दिर कहलावे उसको ही निभावादि की व्यवस्था करनी चाहिये। अपने मन्दिर में आयी हुई सब आवक संघ के मन्दिर में दे देनी चाहिए। यही श्राद्ध विधि आदि शास्त्रों का फरमान है।

ट्रस्टियों के कर्तव्य -

(१) किसी भी ट्रस्टी को आपमति, बहुमति और सर्वानुमति के आग्रही नहीं बनना चाहिये। किन्तु शास्त्रमति के ही आग्रही रहना जरूरी है। मन्दिरादि के तथा वहीवटादि के कार्य शास्त्र के आधार से श्री अरिहन्त परमात्मा की आज्ञा अनुसार करने के लिए सावधानी रखनी चाहिये।

(२) अपने बोले चढ़ावे की या स्वयं ने टीपादि में लिखाकर देने की निश्चित की हुई देवद्रव्यादि की

रकम शीघ्रतया संघ की पेढ़ी में भरपाई करनी चाहिए और लोगों में भी जो देवद्रव्यादि की रकम बकाया होवे उसकी स्वयं या मुनिम के व्दारा उघराणी करके वसूली करनी चाहिए।

हर हमेशा मन्दिर में देवाधिदेव अरिहन्त परमात्मा के दर्शन पूजन करने चाहिए और मन्दिर की सार-संभाल रखके होती हुई आशातनाओं को दूर करने-करवाने का प्रयास करना चाहिये। इसी तरह उपाश्रयादि धर्मस्थानों में भी हर रोज जाना चाहिये और उसकी साफ-सफाई वगैरे करवाने का ध्यान रखना चाहिये। उपाश्रय में गुरुमहाराज बिराजमान होवे तो प्रतिदिन उनको वन्दन करने जाना चाहिये तथा उनके प्रवचन सुनने चाहिये।

उनके पास स्वयं जिस रीति से वहीवट करते हो उसकी जानकारी देनी चाहिये। उसमें जो भुलचूक बतावे उसका सुधारा करना चाहिये। धर्मस्थानों का वहिवट करने की विधि के बताने वाले शास्त्र अवसर पर सुनने चाहिये।

प्रत्येक ट्रस्टी का फर्ज है कि ट्रस्टी बनने पर

मन्दिर में दर्शन पूजन करने वालों की संख्या में वृद्धि होवे तथा उपाश्रय में सामायिकादि की आराधना करनेवालों की संख्या बढ़े और गुरु-महाराज के व्याख्यानादि में ज्यादा लोग उपस्थित होवे ऐसे प्रयत्न करते रहना चाहिये ।

जैन शासन के प्रभावना के महोत्सवादि कार्यों में प्रत्येक ट्रस्टी को सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिये। आजकल कई जगह पर ट्रस्टी वर्ग ट्रस्टी बनने के बाद कुछ ऐसे निष्क्रिय बन जाते हैं कि महोत्सवादि शासन - प्रभावना के प्रसंगों की बात तो बाजू में रखो लेकिन आवश्यक कार्यों के लिये ट्रस्टियों की बुलाई मीटिंग में भी उनकी उपस्थिति नहीं रहती । कोई भी कार्य में भाग नही लेते । यह अत्यन्त ही अनुचित है । संघ के प्रसंगोपस्थित कार्यों में भोग देकर भाग लेने की वृत्ति न होवे तो ऐसे आदमी को ट्रस्टी पद पर आरूढ ही नहीं होना चाहिये ।

हर ट्रस्टी को शासन के प्रत्येक कार्य में जिनागम - शास्त्र का अनुसरण करके संघ को बनाए रखना चाहिये और जैन संघ में विखवाद खडे न हों

इसकी सावधानी रखनी चाहिए। कोई अपने स्वार्थीय कारणों से संघ में विखवाद खड़ा करे तो उसको सप्रेम समझाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये।

मन्दिर के पूजारी आदि से तथा साफ-सफाई आदि के लिए रखे हुए उपाश्रयादि के नौकर से अपना निजी कोई भी कार्य नही करवाना चाहिये। अपना काम करवाना होवे तो उसको अपनी ओर से पैसे देकर ही करवाना उचित है। अन्यथा देवद्रव्यादि के भक्षण का दोष लगेगा। और निजी कार्य पूजारी आदि के व्दारा इस ढंग से तो नहीं ही करवाना चाहिये कि जिससे मन्दिर के कार्यों में, प्रभुभक्तिमें व्याक्षेप पडे, व्याघात होवे।

जिनमन्दिरादि के वहीवट करने वाले ट्रस्टीगण के दिमाग में यह बात निश्चित रूप से होनी चाहिए कि ट्रस्टी पद सत्ता भोगने का पद नही है। लेकिन जिनमन्दिररादि संस्था के सेवक बनकर कार्य करने का पद है। आज कई जगह ट्रस्टी पद को मान-सम्मान सत्ता और प्रतिष्ठा का पद बना दिया है। ये लोग जिनमन्दिरादि की सार-संभाल तथा देवद्रव्यादि की

व्यवस्था सही ढंग से नहीं करते । जब मान-सन्मानादि में बाधा खड़ी होने का प्रसंग उपस्थित होता है तब ये ट्रस्टीमंडल में पक्षापक्षी का वातावरण पैदा करके रगडे झगडे खडे कर देते हैं। अन्त में जाकर ये रगडे झगडे संघ के संप को तोड़ के रहते हैं। उसके कारण कई लोग धर्म विमुख बन जाते हैं। ऐसे ट्रस्टी वर्ग में अरिहन्त परमात्मा के प्रति तथा उनके शासनके प्रति श्रद्धा की कमी है। श्रद्धा हीन पैसेदार जब ट्रस्टी पद पर अरूढ होते हैं तब उनका अभिमान आसमान तक पहुँच जाता है। वे न जिनाज्ञा मुताबिक वहीवटी कार्य करते हैं और न तो उसमें गीतार्थ गुरुभगवन्तों की राय ही लेते हैं। ऐसे लोग अयोग्य स्थानों में देवद्रव्य का दुरुपयोग करके भयंकर पापों का बंध कर दुर्गति के अधिकारी बनते हैं । अतः ट्रस्टी महानुभावों को सूचन किया जाता है कि वे ट्रस्टी पद को मानसन्मानादि का पद न बनाकर सेवा का पद बनावे और श्री अरिहंत परमात्मा की आज्ञा को निगाह में रखकर समय समय पर जिनआज्ञा का पालन करके जिनमन्दिरादि धर्म - स्थानों का तथा देवद्रव्यादि धर्मद्रव्य का वहीवटी कार्य करें, ताकि अपनी आत्मा संसार में डूबे नहीं और दुरन्त

दुःखदायी दुर्गतियों के गहरे खड्डे में गिरे नहीं।

जैन शासन में सारे वहीवटदार लोग सही तौर पर वहीवटी कार्य करके उत्तम कोटी का पुण्य लाभ उठावे इसी हेतु हमारा यह पुस्तक प्रकाशन कार्य है। यह पुस्तक एकध्यान से पुनः वांचकर जिनाज्ञा मुताबिक समस्त ट्रस्टी वर्ग वहीवटी कार्य सही ढंग से करें। यही हमारी शुभ अभिलाषा है।

देव द्रव्यादि की बोली बोलने वालों के कर्तव्य

प्रत्येक महानुभावों का कर्तव्य है महोत्सवादि के प्रसंग पूजा वगेरे करने की तथा पर्यूषण में स्वप्नाजी झुलाने इत्यादि की बोलीयां बोली जाती हैं। उसमें रुपये आदि से जो महानुभाव चढ़ावा लेते हैं और प्रथम पूजादि का लाभ प्राप्त करते हैं। उनको प्रथमपूजादि का लाभ लेने के पहले ही या पश्चात बोली के रुपये तुरंत संघ की पेढी में भर पाई करना चाहिए। कुछ महिने या सालभर के बाद ही पैसे देने होवे तो ब्याज सहित देने

चाहिए। जिससे देवद्रव्यादि धर्म द्रव्य के भक्षण का पाप नहीं लगे। तुरंत ही पैसे संघ की पेढी में भर-पाई करने से वे पैसे बैंक में रखने से ब्याज चालु हो जाता है। कई साल तक चढ़ावे के पैसे भर पाई न करने वाले जब पैसे चुकाते हैं तब जो ब्याज देते नहीं। उनको देव द्रव्यादि भक्षण का भयंकर दोष लगता है।

व्यवहार में भी कोई आदमी किसी को ब्याज से रुपये उधार देता है और उधार लेने वाला एक सप्ताह में ही यदि वे रुपये लौटा देता है तब भी उधार देने वाला कहीं तो एक महिने का पूरा ब्याज ले लेता है। न केवल सप्ताह का। तो फिर जो बोली आदि के रुपए तुरंत न चुकावे, कई महिनों या सालों के बाद चुकावे, वे भी बिना ब्याज के, यह कितना अनुचित है! इसीलिए शास्त्र में कहा गया है कि चढावादि के पैसे तुरंत ही चुका दो, कुछ देर से चुकाना है, तो ब्याज सहित चुकाओ। तभी आपको सच्चा लाभ मिलेगा। तुरंत पैसे देने में एक लाभ यह भी है कि बोली बोलकर लहावा लेने के वक्त में अमाप उत्साह होने की वजह से उसी समय पैसे चुका देने में अपूर्व कोटि का पुण्यबंध होता

है। यदि उसी समय पैसे न दिये जाए, पैसे देने में विलम्ब किया जावे तो पीछे से पैसे देने में उत्साह मंद पड जाता है और कभी तो उत्साह का भंग भी हो जाता है। बिना उत्साह से पैसे भरपाई करे तो पुण्य बन्ध में भी भारी कमी आ जाती है। इसलिए हरेक पुण्यवान श्रावक को शास्त्राज्ञानुसार फर्ज है कि बोली बोलते ही पैसे भरपाई कर देना या विलम्ब से भरपाई करना होवे तो ब्याज सहित भरपाई करना चाहिए। जिससे अच्छे पुण्य बन्ध के भागीदार बन सके।

अपने यहां पुण्यवान उदारताशील ऐसे भी श्रावक हो गये हैं कि चढावे बोलकर तुरन्त ही पैसे भरपाई करते थे। महामंत्रीश्वर पेथडशा ने गिरनार तीर्थ के दिगम्बर के साथ विवाद में इन्द्रमाल पहिनकर गिरनार तीर्थ जैन श्वेताम्बर की मालिकी का करने के लिए ५६ धडी सोने की बोली लगा करके चढावा लिया था। व ५६ धड़ी सोना भरपाई करने के लिए उंटडिओं पर अपने घर से सोना लाने के लिए अपने आदमिओं को भेजा था। क्योंकि सोना न आवे तब तक अन्नपाणी न लेना, यह निर्णय था। ५६ धडी सोना आने में दो दिन लगे,

दो दिन के उपवास हुए। तीसरे दिन पेढी में ५६ धडी सोना चुकाकर पारणा किया। यह बात खास याद रखने जैसी है, और याद रखकर जीवन में अमली बनाने जैसी है। जो बोली बोलो वह तुरन्त दे दो। हो सके तो बोली बोलने वालों को पैसे जेब में लेकर ही आना चाहिए। उघाई करने के लिए मुनिम वगेरे वहीवट करने वालों को रखने पडे, यह रीत योग्य नहीं है। इसमें शाहुकारी नहीं रहती है। बोली के पैसे तुरन्त देना यह पहली शाहुकारी है, देने में विलंब करते हुए भी यदि ब्याज बजार भाव का देवे तो भी ठीक है। स्वयं लेवे दो टका और देवे एक टका ब्याज, तो देवद्रव्य का एक रूपया खा जाने का दोष लगता है।

चढावे की रकम तुरन्त न देने में कभी अकल्पित बनाव भी बन जाते हैं। श्रीमंताई पुण्य के अधीन है। पुण्य खतम हो जावे और पाप का उदय जागृत हो जावे तो बड़ा श्रीमंत भी एकदम दरिद्री बन जाता है। लक्ष्मी चली भी जाती है, जिंदगी तक जीवन जीने में भी कठिनाईयां भोगनी पडती हैं। ऐसी अवस्था में धर्मादा द्रव्य का देना कैसे चुकावे ? अन्त में कर्जदार बनकर

भवान्तर में जाना पडता है।

धर्मस्थानों का देना बकाया रखना और मुनिम आदि को धक्के खिलाते रहना यह रीत भी लाभदायी तथा शोभास्पद नहीं है। अतः आत्मकल्याण के लिए जितने द्रव्य का सद्व्यय करना नक्की किया है। वह तुरंत दे देना ही आत्मार्थी पुरुष के लिए वाजबी है।

जैन शासन में सर्वश्रेष्ठ कोटी का द्रव्य देवद्रव्य माना गया है। उसको जानपने या अनजानपने में अपने उपयोग में लेना, खा जाना, नुकसान पहुँचाना तथा कोई खा जाता होवे, चुरा लेता होवे, हानि पहुँचाता होवे उसकी उपेक्षा करना यह बड़ा पाप है।

हिंसा के पापों में जैसे तीर्थंकर की हिंसा सबसे बड़ा पाप है। उसी तरह देव द्रव्य का भक्षणादि करने से बढकर कोई बड़ा पाप नहीं है।

सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि एकेन्द्रिय जीव की हिंसा से बेइंद्रिय जीव की हिंसा में ज्यादा पाप है, उससे तेइन्द्रिय जीव की हिंसा में ज्यादा पाप है। इस तरह चौरिन्द्रिय की तथा पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा में उत्तरोत्तर ज्यादा पाप लगता है।

मनुष्य में भी एक सामान्य मनुष्य की हिंसा की अपेक्षा उत्तरोत्तर शेठ श्रीमंत शक्ति सम्पन्न तथा राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, साधु, उपाध्याय, आचार्य, गणधर - तीर्थंकर की हिंसा में अधिक - अधिक पाप लगता है। क्योंकि एकेन्द्रिय से लगाकर तीर्थंकर तक के जीव उत्तरोत्तर विशेष विशेष पुण्यवान होते हैं। विशेष विशेष पुण्यवानों की हिंसा करने में उत्तरोत्तर हिंसक के दिल में निर्दयता और क्रूरता अधिक अधिक आती है।

उसी तरह कोई आदमी सामान्य किसी आदमी का धन खा जावे उसकी अपेक्षा जीवदयादि का द्रव्य खा जावे तो ज्यादा पाप का बन्ध करे। उससे भी साधारण द्रव्य - श्रावकादि का द्रव्य, साधु आदि का द्रव्य-ज्ञान द्रव्य तथा देवद्रव्य का भक्षण करने वाले को उत्तरोत्तर अधिक अधिकतर और अधिकतम पाप का बन्ध होता है।

सब जीवों में तीर्थङ्कर सर्वश्रेष्ठ है। उसी तरह सर्व - द्रव्य में देवद्रव्य सर्वश्रेष्ठ कोटी का द्रव्य है। तीर्थङ्कर की हिंसा करने की प्रवृत्ति करने वाला जैसे घोर पापी

है, उसी तरह देवद्रव्य का भक्षणादि करनेवाला भी घोर पापी है।

देवद्रव्य के भक्षणादि का ऐसा घोर पाप है कि देवद्रव्यादि का भक्षणादि करने वाले को इस जन्म में भी दरिद्रतादि की भयंकर यातनाएं भोगनी पडती हैं और जन्मान्तर में दुर्गतियों के चक्कर में अनन्त अनन्त बार घूमना पडता है । अनन्तान्त असह्य दुःख भोगने पड़ते हैं।

मन्दिर के दीपक से अपने घर का काम करने वाली देवसेन श्रेष्ठि की माँ की क्या दशा हुई ? उसकी जानकारी के लिए उपदेश प्रासाद, श्राध्द विधि आदि ग्रन्थों में उसका द्रष्टान्त आता है -

इन्द्रपुर नगर में देवसेन नाम के धनाढ्य सेठ रहते थे। हररोज उसके घर एक उंटडी आती थी। उसको बेडीया मार-मार के अपने घर ले जाता था, लेकिन वह उंटडी वापस देवसेन सेठ के घर पर आ जाती थी। यह देखकर देवसेन श्रेष्ठि को बडा आश्चर्य हुआ। एक दफे ज्ञानी गुरु भगवन्त पधारे। उनसे देवसेन श्रेष्ठि ने पूछा 'भगवन् यह उंटडी बार-बार मेरे घर पर क्यों आ जाती

है ? तब ज्ञानी गुरु भगवन्त ने कहा कि यह उंटडी गत जन्म में तेरी माँ थी । वह हरहमेश जिनेश्वर भगवन्त के आगे दीपक करती थी और उसी दीपक से अपना घर काम भी करती थी । जिनेश्वर भगवन्त के आगे धरे हुओ दीपक से घर काम करने से देवद्रव्य भक्षण का पाप लगता है। तेरी माँ जिनेश्वर देव के आगे रखे दीपक से अपने घर का काम करती थी। उसी तरह धूप के लिए रखी धूपदानी की अग्नि से चूल्हा भी जलाती थी । इन दोनों पाप से तेरी माँ उंटडी रूप से पैदा हुई है। तुझे और तेरे घर को देखकर इसे शान्ति मिलती है। अब तू इसे तेरी माँ के नाम से बुला और दीपक की तथा धूप की बात कर, जिससे इसे जातिस्मरण ज्ञान और प्रतिबोध होगा ।

देवसेन सेठ ने गुरु भगवन्त के कहे मुताबिक बात की। अपना पूर्वभव सुनकर उंटडी को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। गत जन्म में किये देवद्रव्य भक्षण के पाप का उसे भारी पश्चाताप हुआ और सोचने लगी "अरे ! इस पाप से उत्तम कोटी का मानव जन्म गँवा कर मैं जानवर बन गई। अब मेरा क्या होगा ? मैं धर्म कैसे

कर सकूंगी ? वह धर्म पाई। गुरु के पास सचित्तादि के त्याग के नियम लिए। सुन्दर जीवन जीने लगी। अन्त में शुभ ध्यान में मरकर देवलोक में गई।

इसलिए अपने पूर्वाचार्य कहते हैं कि मन्दिर की कोई भी चीज या उपकरण का अपने स्वयं के काम में उपयोग नहीं करना चाहिए - ताकि देवद्रव्य के भक्षण का पाप न लगे।

जिस तरह मन्दिर की कोई भी चीज का अपने कार्य में उपयोग करना पाप है। उसी तरह मन्दिर की कोई भी अच्छी चीज अदल बदल कर ले लेना यह भी भारी पाप बन्ध का कारण है और इस जन्म में भी दरिद्रतादि कई प्रकार से दुःखदायी बनता है। इस बात को जानने के लिए शुभंकर श्रेष्ठि की कथा उन्हीं शास्त्रों में लिखी है। वह इस तरह है -

कांचनपुर नगर में शुभंकर नाम के सेठ रहते थे। संस्कारी और सरल स्वभावी शुभंकर सेठ को प्रतिदिन जिनपूजा और गुरु वन्दन करने का नियम था।

एक दिन सुबह में किसी जिनभक्त ने दिव्य

चावलों से प्रभुभक्ति की। सेठने दिव्य चावल की ढगलियां मन्दिर के रंगमंडप में देखी। वे चावल अलौकिक थे तथा सुगन्ध से तन मन को तरबतर करने वाले थे। उन चावलों को देखकर शुभंकर सेठ के दाढ में पानी आ गया और सोचा कि यदि इन चावलों का भोजन किया जाय तो उसका स्वाद कई दिनों तक याद रह जायगा।

"मंदिर में जिनेश्वर देव की भक्तिमें रखे चांवल तो ऐसे ही लिए नहीं जाते। अब क्या करना ?" अन्त में उसने रास्ता ढूंढ निकाला। अपने घर से सामान्य चावल लाकर दिव्य चावल के प्रमाण में अधिक रखकर उन चावलों का बदला किया। दिव्य चावल घर ले जाकर उनकी खीर बनाई। खीर की खुशबू चारों ओर फैल गई।

उस समय मासोपवासी एक तपस्वी मुनि महात्मा का उसके घर में पदार्पण हुआ। सेठ ने मुनि महात्मा को खीर बहोराई। मुनि महात्मा खीर वहेर कर उपाश्रय तरफ जा रहे थे। रास्ते में पातरे को अच्छी तरह से ढंकने पर भी दिव्य खीर की खुशबू मुनि महात्मा के नाक तक पहुँच गई। तब मुनि ने न करने जैसे विचार किए।

सेठ मेरे से भी बहोत भाग्यवान हैं कि वे ऐसा स्वादिष्ट और सुगन्धित भोजन प्रतिदिन करते हैं। मैं तो साधु रहा, मुझे ऐसा भोजन सदा कहाँ से मिले ? लेकिन आज मेरे भाग्य के व्दार खुल गये हैं। आज तो स्वादिष्ट और सुगन्धित खीर खाने को मिली है। ज्यों ज्यों उपाश्रय तरफ मुनि आगे बढ़ रहे हैं, त्यों त्यों मुनि की विचारधारा भी दुर्ध्यान तरफ आगे बढ़ती जाती है। अन्त में तो यहाँ तक निर्णय कर लिया कि "यह खीर गुरु को बताउंगा तो सब वे खा जायेंगे। इसलिए गुरुजी को बताये बिना उनको खबर न पडे इस तरह एकान्त में बैठ कर खीर खा लुंगा।"

उपाश्रय में जाकर गुरु को खबर न पडे इस तरह चुप के से खीर अकेले ने खा भी ली। खाते खाते भी खीर के स्वाद की और शुभंकर सेठ के भाग्य की खूब-खूब मनोमन प्रशंसा करने लगे ! "अ हा हा ! क्या मधुर-स्वाद ! देवों को भी ऐसी खीर खाने को मिलना मुश्किल है। मैंने तप करके फिजुल देहदमन किया"।

मुनि खीर खा के शाम को सो गये। प्रतिक्रमण भी नहीं किया। गुरुने प्रेरणा की फिर भी वह सोते ही

रहे। सुबह भी प्रतिक्रमण नहीं किया। गुरु महाराज ने विचार किया। "यह क्या हुआ ? यह मुनि तो महान् आराधक है। साधु-जीवन की समस्त क्रियाएं प्रतिदिन अप्रमत्त भाव से करता था। आज ऐसा क्यों ? मुझे लगता है की इसने अवश्यमेव अशुद्ध आहार का भोजन किया है"।

गुरु महाराज यह विचार कर रहे थे उस वक्त सुबह में शुभंकर सेठ गुरु भगवन्त को वन्दन करने आये। सेठ ने देखा मुनि महात्मा अभी तक सोये हुए हैं। गुरु को इसका कारण पूछा। गुरु ने कहा "यह मुनि गोचरी करके सोये हैं। उठाने पर भी उठे नहीं। मुझे लगता है की कल इसने कोई अशुद्ध आहार का भोजन किया होगा। यह सुनकर सेठ ने कहा कि कल तो मैंने ही गोचरी बेहेराई है।

गुरुने पूछा, शुभंकर सेठ! आपको तो मालूम ही होगा कि आपने बहोराया हुआ आहार शुद्ध और मुनि को खप में आवे वैसा ही था न ?

शुभंकर सेठ ने सरल भाव से बिना छुपाये मन्दिर में से बदलकर लाए चांवल से बनाई खीर की

बात कह दी।

गुरु महाराज ने कहा "शुभंकर ! यह आपने ठीक नहीं किया। तुमने देवद्रव्य के भक्षण का महान पाप किया है"।

सेठ ने कहा -. हां गुरुजी ! उसके पीछे मेरे को भी कल बहुत धन की हानि हुई है।

गुरु ने कहा - तेरे तो बाह्य धन की हानि हुई और इस मुनि को अभ्यन्तर संयम धन की हानि हुई है।

हे शुभंकर ! इस पाप से बचना हो तो तेरे पास जो धन है उसका व्यय करके एक जिनमन्दिर बना देना चाहिये।

सेठ ने पाप से बचने के लिए एक मन्दिर अपने सारे धन से बनवाया।

साधु के पेट की जुलाब की औषधि देकर शुद्धि की तथा पातरे को गोबर और राख के लेप लगाकर तीन दिन धूप में रखकर और उसके बाद शुद्ध जल से साफ करके शुद्धि की। मुनि महात्मा ने भी अपने किये अतिचार - पाप का प्रायश्चित कर लिया।

इस द्रष्टान्त से यह बात सिद्ध होती है कि देवद्रव्य का भक्षण हलाहल विष है। अनजान में भी भक्षण हो जावे तो इस जन्म में भी आदमी को नुकसान किये बिना नहीं रहता, तो जानबूझ के खाने वाले की क्या दशा होवे !

इससे सब श्रावकों को यही सीखने का है कि अधिक द्रव्य देकर भी देवद्रव्य की चीज अपने उपयोग में नहीं लेनी और परस्पर किसी को देनी भी नहीं।

देवद्रव्य के भक्षणादि के बारे में शास्त्र में बहुत से द्रष्टान्त दिये हैं उनको वांचकर-सुनकर देवद्रव्य के भक्षणादि से बचने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए।

देव द्रव्य बाबत सभी सम्प्रदाय के मुनि सम्मेलन का एक निर्णय

(१) मंदिर का पैसा (देवद्रव्य) मूर्ति बनाने व मंदिर निर्माण व जीर्णोद्धार सिवाय कहीं वापरना नहीं।

(२) प्रभुना मंदिर मां के बहार गमे ते ठिकाने प्रभुना निमित्ते जे जे बोली बोलाय ते सघलुं देव द्रव्य कहेवाय।

(३) उपधान संबन्धी माला आदि नी उपज देव -

द्रव्यमां लइ जवी योग्य जणाय छे।

(४) श्रावकोए पोताना द्रव्यथी प्रभु पूजा वगेरेनो लाभ लेवो ज जोइए। परन्तु कोई स्थले अन्य सामग्रीना अभावे प्रभुनी पूजा आदिमां वांधो आवतो जणाय तो देव द्रव्य मांथी पण प्रभुनी पूजादि तो जरूर थवी जोइए।

(५) तीर्थ अने मंदिरोना वहीवटदारोए तीर्थ अने मंदिर सम्बन्धी कार्य माटे जरूरी मिल्कत राखी बाकीनी मिल्कतमांथी तीर्थोद्धार अने जीर्णोद्धार तथा नवीन मंदिरो माटे योग्य मदद आपवी जोईए।

एम आ मुनि सम्मेलन भलामण करे छे.

द. विजय नेमिसूरि। जयसिंह सूरि। विजयसिद्धिसूरि। आनंद सागर। विजय वल्लभ सूरि। विजयदान सूरि। विजयनीति सूरि। मुनि सागरचन्द। विजय भूपेन्द्र सूरि।

अखिल भारत वर्षीय जैन श्वेतांबर मुनिसम्मेलने सर्वानुमते आ पट्टक रूपे नियमो कर्या छे. तेनो असल पट्टक शेठ आणंदजी कल्याणजी नी पेढीने सोंप्यो छे.

श्री राजनगर जैन संघ **कस्तुरभाई मणिभाई**

वंडा वीला ता. १०-४-३४

एक कोथली से व्यवस्था दोषित है।

देवद्रव्यादि धर्म द्रव्य की व्यवस्था एक कोथली से करना दोषपात्र होने की वजह से अत्यन्त अनुचित है।

कई गांवों में एक कोथली की व्यवस्था है। देव-द्रव्य के रुपये आवे तो उसी कोथली में डाले, ज्ञान द्रव्य के रुपये आये तो उसी कोथली में तथा साधारणादि के रुपये वे भी उसी कोथली में डालते हैं। जब मंदिरादि के कोई कार्य में खर्चने होते हैं तब उसी कोथली में से खर्च करते हैं। लेकिन जब उस कोथली में केवल देव - द्रव्य के ही रुपये पडे होते हैं और चौपड़े में ज्ञान या साधारण खाते का एक पैसा भी नहीं हैं। उस वख्त आगम ग्रन्थ लिखवाने का या छपवाने का कार्य उपस्थित हुआ अथवा साधु साध्वीजी महाराज को पढाने वाले पंडितजी को पगार चुकाने का प्रसंग उपस्थित हुआ, तब जिस कोथली में केवल देव द्रव्य का ही धन बचा है उसमें से रुपये लेकर खर्च करते हैं। उससे जब तक कोथली में ज्ञान या साधारण द्रव्य उघराणी में से न आवे तब तक देवद्रव्य का उपभोग हुआ। अतः एक कोथली पाप में पडने का

उपाय है। वास्तव में देवद्रव्य की, ज्ञानद्रव्य की तथा साधारण द्रव्य वगेरे सबकी कोथली अलग अलग रखनी चाहिए। देवद्रव्य आदि के उपभोग से बचने के लिये यह बहुत ही जरूरी है। मंदिर का कार्य आवे तो देवद्रव्य की कोथली में से धन व्यय करना चाहिए। ज्ञान का कार्य आवे तो ज्ञान द्रव्य की कोथली में से धन व्यय करना चाहिये। लेकिन ज्ञान या साधारण खाते की रकम न होवे तो देवद्रव्य की कोथली में से लेकर ज्ञानादि के कार्य में व्यय नही कर सकते। देव द्रव्य का व्यय करने की नौबत आवे तब वे ज्ञानादि के कार्य बन्ध रखने चाहिये। यद्यपि देवद्रव्य कोथली में न होवे और मंदिर का कोई कार्य आवे तो ज्ञान द्रव्यादिका उपयोग हो सकता हैं। क्योंकि उपले खाते के कार्य में नीचले खाते की सम्पत्ति का व्यय करने में शास्त्र का कोई बाध नही है। अत: देवद्रव्यादि सब द्रव्य की एक कोथली ट्रस्टीओं के लिए कार्य करने में सुविधा जनक होते हुए भी देव द्रव्यादि के उपयोग के पाप के कारण दोष है। इस हेतु सब द्रव्य की एक कोथली रखना और सब कार्यों में उसमें से खर्चना तद्दन गलत है।

आयड अति प्राचीन तीर्थ-तपागच्छ उद्गम स्थान

उदयपुर हांथी पोल से ३ k.m. दूर अति प्राचीन चार विशाल जैन मंदिर हैं। तेरहवी सदी में परमतपस्वी आचार्य श्री जगच्चन्द्रसूरिजी के आजीवन बारह वर्ष तक आयंबिल तपस्या से प्रभावित होकर मेवाड के महाराणा जेत्रसिंह ने उन्हें 'तपा' का बिरुद दिया था। तब से महावीर स्वामी की परम्परा के साधुओं का तपागच्छ कहलाया।

दो मंदिरों का जीर्णोद्धार चल रहा है। उनमें एक का आणंदजी कल्याणजी पेढी, अहमदाबाद व दूसरे का पिण्डवाडा जैन संघ पेढी की ओर से हो रहा है।

धर्मशाला, भोजनशाला, उपाश्रय भी बनेंगे। दाताओं के लिए लक्ष्मी के सदुपयोग करने का सुंदर स्थान है।

● पत्र व्यवहार ●

c/o. **दीवान सिंह बाफना**

घंटाघर - उदयपुर

(राजस्थान) पिन - ३१३००१

फोन. R. २३३०७ - S. २४५५

श्री दयालशाह किला जैन श्वे. तीर्थ

कांकरोली - राजसमन्द के बीत्त राजसमन्द झील के किनारे सुंदर पहाडी पर तिमंजिला विशाल प्राचीन चौमुखा आदि जिन प्रासाद, २२०० वर्ष प्राचीन पुंडरीकस्वामी, शांतिजिन मंदिर, सम्मेतशिखर, तलहट्टी मंदिर, गुरुगौतम मंदिर दर्शनीय हैं। भोजनशाला, उपाश्रय, धर्मशाला आदि सुंदर व्यवस्था है। पत्र व्यवहार - श्री दयालशा किला जैन तीर्थ पेढी दयालशा मार्ग. पो - राजसमंद (राजस्थान)
पिन. ३१३३२६ फोन - २०४१ एक्स - कांकरोली

मंदिर का जीर्णोद्धार चल रहा है। देवद्रव्य के सदुपयोग करने का सुअवसर है

कोबा (गांधीनगर) पि. ३८

शास्त्रवचन - महावीर वाणी

नवीनचैत्य विधाने, यत्पुण्यं प्रकीर्त्तितम्।
तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते॥

अर्थ - नया जैन मंदिर बनाने में जितना पुण्य होता है। उससे आठ गुना पुण्य जीर्णोद्धार कराने से होता है।

पुस्तक मिलने का पता

मनरूपजी रिखबचंद एण्ड कंपनी
७२/ झवेरी बाजार, १ला माला
मुंबई २.

❀ ❀ ❀ ❀

पो. तखतगढ (राजस्थान)
पिन - ३०६९१२ जिला - पाली